International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 25-27

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 25-27
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 11-01-2015
Accepted: 08-02-2015

डॉ0 नन्दिनी समाधिया
पी0एच0डी0 (संस्कृत)
1054 खजूर बाग नई बस्ती झाँसी

मनुस्मृति विश्व का सबसे प्राचीन एवं मौलिक गन्थ एवं इनका जीवन पर प्रभाव

डॉ0 नन्दिनी समाधिया

मनुस्मृति विष्व का सबसे प्राचीन एवं मौलिक ग्रन्थ :

मनुस्मृति के प्रणयन का कालनिर्धारण करना अत्यन्त दुस्कर कार्य है। कुछ लोगों की मान्यता है कि मनुस्मृति की रचना एक चरण का कार्य नहीं है, अपितु इसमें समय–समय पर परिवर्तन–परिवर्धन होते रहे हैं। प्रो0 मैक्सयूलर और डॉ0 बुल्हर की यह मान्यता है कि मनुस्मृति मानवाचरण के धर्मसूत्र का संशोधित रूप है। परन्तु यह मानना सरल कार्य नहीं है, क्योंकि मानव धर्मसूत्र की सत्ता का समर्थक कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। डॉ0 पी0वी0 काण्रे ने इस बात का कथन किया है कि मानव धर्मसूत्र का कोई अस्तित्व ही नहीं था। मनुस्मृति का कालनिर्धारण अन्तः बाह्म साक्ष्यों पर आश्रित है। अतः उन पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

बृहस्पति ने स्थान–स्थान पर मनुस्मृति के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। ये उद्धरण मनुस्मृति के वर्तमान संस्करण में पाये जाते हैं। बृहस्पति का समय ईसा की पाँचवीं शताब्दी का अन्त है। इसी समय के लगभग विद्यमान जैमिनिसूत्र के भाष्यकार शबर स्वामी ने भी मनुस्मृति को उद्धृत किया हैं बलभीराम धारसेन के एक शिलालेख में मनुस्मृति की सत्ता का ज्ञान होता है। इसके बाद के तो अनेकों ग्रन्थों में मनुस्मृति का वर्णन हुआ है। मनुस्मृति के सर्वप्रथम टीकाकार मेधातिथि का समय 900 ई0 है। इस प्रकार पाँचवीं शताब्दी के और बाद के अनेक लेखों ने मनुस्मृति का उल्लेख किया है। किन्तु मनुस्मृति का मौलिक रूप क्या था, यह विषय अत्यन्त विवादास्पद है। क्योंकि नारदस्मृति में कहा गया है कि मनु के धर्मशास्त्र को नारद, मार्कण्डेय और सुमति भार्गव ने संक्षिप्त किया। नारद स्मृति का यह कथन संदिग्ध होते हुए भी सर्वदा ध्यान न देने योग्य नहीं माना जा सकता है। डॉ0 पी0वी0 काणे नारदस्मृति के इस कथन को भ्रामक मानते हैं। यह अवश्य है कि मनुस्मृति याज्ञवल्क्यसमृति से पूर्ववर्ती है। क्योंकि मनुस्मृति में जिन न्याय एवं कानून विषयक बातों का पूर्ण एवं स्पष्ट विवेचन नहीं हुआ है, उनका विवेचन याज्ञवल्क्यस्मृति में हुआ है।

याज्ञवल्क्यस्मृति का समय ईसा की तीसरी शताब्दी है। मनुस्मृति की रचना निश्चित ही इससे बहुत पहले हो चुकी होगी। लेकिन यह रचना ई0पू0 तीसरी शताब्दी के पहले नहीं मानी जा सकती है क्योंकि मनु ने यवन, कम्बोज, शक, पह्लव और चीनियों का नाम लिया है, जो सिद्ध करता है कि मनुस्मृति की रचना तीसरी शताब्दी के पूर्व की नहीं है।

धम्मपद पालिभाषा में रचित बौद्धधर्म का प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसे बौद्धजगत् बौद्धगीता के नाम से जानता है। इसको अनेक गाथाओं की मनुस्मृति से समानता है। उदाहरण के रूप में कुछ यहाँ द्रष्टव्य हैं–

''अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम्।।''
''अभिवादनसीलिस्य निच्चं वद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा बड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं।।''
''न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं बिदुः।।''
''न तेन थेरो होति, येनस्स पलितं सिरो।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो' व वुच्चति।।''

अन्य स्थलों पर भी मनुस्मृति में और धम्मपद में शब्दों एवं भावों का साम्य दृष्टिगत होता है, जिसे ग्रन्थ के अनुवार स्थलों पर विशेष के अन्तर्गत हमने दिखाया है। उक्त साम्य के आधार पर भी श्री भगवद् दत्त जी धम्मपद पर मनुस्मृति का प्रभाव मानते हैं। उनकी दृष्टि में धम्मपद का रचनाकाल

डॉ0 नन्दिनी समाधिया
पी0एच0डी0 (संस्कृत)
1054 खजूर बाग नई बस्ती झाँसी

400ई0पू0 है(द्रष्टव्य–बाहेस्पत्य अर्थसूत्र की भूमिका), परन्तु न तो धम्मपद का समय 400 ई0 पू0 मानना ही असंदिग्ध है और न ही धम्मपद पर मनुस्मृति का प्रभाव मानना। क्योंकि जिस तर्क के आधार पर धम्मपद पर मनुस्मृति का प्रभाव माना जा सकता है, उसी तर्क के आधार पर मनुस्मृति पर धम्मपद का भी प्रभाव कहा जा सकता है। निश्चित समय निर्धारण के बिना श्री भगवद् दत्त जी का वक्तव्य निरापद–नहीं माना जा सकता है। जैसा कि श्री अजितकुमार सेन ने ष्जनकपमे पद भ्पदकन च्वसपजपबंस जीवनहीजष् में कहा भी है कि मनु ने बौद्धों द्वारा प्रचारित हिन्दू धर्म विरोधी विचारों का खण्डन करने के लिए मनुस्मृति में राजा को सर्वशक्तिमान् घोषित किया है। बाद में यह सोचकर कि कहीं इसका विपरीत प्रभाव न हो जावे मनु ने आगे संशोधन भी किया। यही कारण है कि मनुस्मृति में अपने ही दो कथनों में अनेक स्थलों पर विरोध देखा जा सकता है। भले ही कुछ लोग इसे मनुस्मृति की शैलीगत विशेषता मान लें परन्तु श्री सेन के दृष्टिकोण को सर्वथा नकारा नहीं जा सकता है।श्री के0पी0 जायसवाल मनुस्मृति का निर्माणकाल सुंगवंशीय शासक पुष्यमित्र अथवा उसके उत्तराधिकारी के समकालीन मानते हैं। महाभाष्य में पतंजलि ने ''इह पुष्यमित्रं याजयामः'' कहकर पुष्यमित्र के साथ वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया है। अतएव पतंजलि और पुष्यमित्र का समकालीन होना स्पष्ट है। पतंजलि का समय 188 ई0पू0 मान्य है। अतः मनुस्मृति की रचना का समय भी द्वितीय शताब्दी ई0पू0 होना सिद्ध होता है। श्री जायसवाल का कहना है कि पुष्यमित्र ब्राह्मण राजा था, इसीलिए उस समय मनुस्मृति में राजा की संप्रभुता, देवांशता आदि का कथन किया गया तथा ब्राह्मणों को अनुचित महत्त्व दिया गया। जो कुछ भी हो पर इतना निश्चित है कि मनुस्मृति का रचनाकाल लगभग वही है, जो श्री जायसवाल जी ने माना है। श्री बूल्हर और पी0वी0 काणे भी ई0पू0 द्वितीय शताब्दी से ई0पू0 की प्रथम शताब्दी के प्रारंभ तक मनुस्मृति का रचनाकाल मानते हैं। श्री भगवद दत्त जी की विचारधारा का सयुक्तिक खण्डन किया जा चुका है। मेक्स डंगर ने मनुस्मृति का रचनाकाल बौ0 एवं जैनधर्म के उदय के पूर्व 600 ई0पू0 के लगभग माना है, जिसके लिए उन्होंने कोई सबल प्रमाण नहीं दिया। अतएव उनके मत का खण्डन तो भगवददत्त जी के मत का निराकरण से ही हो जाता है। अद्यावधि उपलब्ध प्रमाणों, आलोचन–प्रत्यालोचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनुस्मृति के वर्तमान रूप का प्रणयन ई0पू0 द्वितीय शताब्दी के आस–पास हो चुका था। परन्तु यह कहना संभव नहीं है कि इसके स्रोत के रूप में पहले भी कोई इस प्रकार ग्रन्थ था या नहीं। कुछ लोग मनुस्मृति का रचनाकालसहस्रों वर्ष ई0पू0 तक खींचने की कोशिश करते हैं, पर वे यह भूल जाते हैं कि मनुस्मृति में उल्लिखित यवन्, तक पह्लव, कम्बोध एवं चीनियों का भारत में आगमन कब मानेंगे।

मनुस्मृति का वर्तमान रूप बारह अध्यायों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः 119, 249, 286, 260, 169, 97, 226, 420, 336, 131, 365 तथा 126 कुल 2694 श्लोक हैं। अध्यायानुसार विवेच्य विषय इस प्रकार हैं–

प्रथम अध्यायः– विश्वसृष्टि, चारों युग और उनका परिमाण, मन्वन्तर, प्रलय, चारों युगों में क्रमशः धर्म का ह्रास, युगानुरूप धर्म, चारों वर्णों का आचार एवं कर्तव्य, ब्राह्मणों की श्रेष्ठता आदि।

द्वितीय अध्याय :– धर्म का लक्षण एवं उसकी वेदमूलकता, श्रुति–स्मृति की प्रामाणिकता, द्विजातियों के संस्कार, भोजन के नियम और अतिभोजननिषेध, प्रणव, व्याहृति एवं सावित्री की उत्पत्ति और उनकी प्रशंसा, गुरु, वृद्ध, भाभी आदि को अभिवादन का ढंग, ब्रह्मचारी के कर्तव्य, गुरुनिन्दा सुनने का निषेध, अखण्ड ब्रह्मचर्य का फल आदि।

तृतीय अध्याय :– चारों वर्णों का विवाह–विधान, आठ प्रकार के विवाहों का स्वरूप एवं उनका फल, सवर्णा–असवर्णा कन्या के विवाह, युग्म–तिथियों में पुत्रोत्पत्ति तथा अयुग्म ने कन्या, स्त्रीधनग्रहण में दोष, पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान, गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता, भोजन के विशिष्ट नियम, श्राद्ध के अनेक नियम और तर्पण का फल।

चतुर्थ अध्याय :– गृहस्थाश्रम का काल, यज्ञ तथा वेदाध्ययन की स्तुति वेद–विरुद्ध कर्म एवं इन्द्रियासक्ति का त्याग, कुल के अनुरूप आचरण, संयम की प्रशंसा, अतिथि की पूज्यता; रजस्वला स्त्री में तिलभोजन; नग्न शयन; शूद्रादि के व्रतकथन आदि का निषेध, ब्राह्ममुहूर्त में जागरण, प्रातःकार्य आदि का देवत्व, परस्त्री निन्दा, दुराचार की निन्दा, सदाचार की प्रशंसा, यम–नियम का वर्णन, श्रद्धापूर्वक दान एवं वेदाध्यापन की प्रशंसा तथा असत्यभाषण की निन्दा आदि।

पंचम अध्याय :– मृत्यु विषयक प्रश्न, यज्ञादि कार्य के बिना उदरपूर्ति के लिए मांस की निषिद्धता, लहसुन आदि के भक्षण का प्रायश्चित्त, यज्ञ के लिए पशु–वध, द्रव्य–यज्ञपात्र–धान्य–वस्त्र आदि की शुद्धि, आचमन की विधि, स्त्री का धर्म एवं उसकी स्वतन्त्रता का निषेध, पतिसेवा की ही यज्ञ रूप में मान्यता एवं स्त्रियों के पृथक् यज्ञ का निषेध, पतिव्रता स्त्री के व्रत का फल, पुनर्विवाह तथा गृहस्थाश्रम की समयावधि आदि।

षष्ठ अध्याय :– वानप्रस्थाश्रम का काल, वानप्रस्थी का पत्नी के साथ वन में निवास, चर्म, चीर एवं जटा आदि का धारण करना, अतिथि की चर्या, वृक्षफल मूलादि का भक्षण, भूमि पर शयन, वेदाध्ययन, अभयदान का फल, संन्यासियों के नियम, मुक्त का स्वरूप, पूजा पूर्वक भिक्षा लेने का निषेध, सभी आश्रमों में गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता, वेदसन्यासी और वेदसन्यास का फल आदि।

सप्तम अध्याय :– राजा का धर्म, दण्ड की उत्पति एवं उसकी प्रशंसा, अधर्मपूर्वक दण्डाचारण में दोष, न्यायी राजा की प्रशंसा और अन्यायी राजा की निन्दा, राजा द्वारा विद्याध्ययन, इन्द्रियों पर विजय, कामादि का त्याग तथा सन्धि–विग्रह आदि षड्विध उपायों की चिन्ता, सेनापति दूत आदि के कर्तव्य और उनके गुण, कर का आदान, सुपात्र में दान का फल, दस्युओं का निग्रह, दूतसम्प्रेषण, सन्धिविग्रह आदि के लिए उचित समय, शत्रु राज्य पर चढ़ाई की विधि, अपनी सेना की परीक्षा, शत्रु के राष्ट्र का पीडन, मित्र, शत्रु एवं उदासीन के गुण, आपत्ति आ जाने पर उपाय का विचार, अन्न–भोजन आदि की परीक्षा तथा विषयाशक रत्नों का धारण करना, गोपनीय बातों को अच्छी तरह से सुनना।

अष्टम अध्याय :– राजा के न्यायिक कर्तव्य, व्यवहार या विवादों के अष्टादश प्रकार, मुकदमों में पराजय के कारण, गवाहों की भिन्नता, झूंठी गवाही का दण्ड, सत्यकथन की प्रशंसा, दण्ड के विभिन्न प्रकार, ब्राह्मण को मृत्युदण्ड का निषेध, माता–पिता पत्नी–सन्तनि आदि की अत्याज्यता, राजा की धर्माधर्म के षष्ठांश में भागिता, दासों के प्रकार तथा कर्तव्यपालन से राजा की मुक्ति।

नवम अध्याय :– पति–पत्नी का व्यवहारानकूल धर्म पतिव्रता की प्रशंसा, बालक पर अधिकार, व्यमिचार का प्रायश्चित्त, वर्णसंकरता, विवाह की अवस्था, सम्पत्ति का बटवारा, पुत्रिका; पुत्री का पुत्रः दत्तक पुत्र एवं शूद्रा में उत्पन्न ब्राह्मण के पुत्र के अधिकार, सपिण्ड के अभाव में सम्पत्ति पर राजा का अधिकार, आर्यों की रक्षा का फल, चोरी की खोज, बन्दीगृह, पुत्र को राज्यभार सौंपकर युद्ध में प्राणत्याग तथा वैश्य एवं शूद्र के कर्तव्य।

दशम अध्याय :– अध्यापन पर ब्राह्मण का एकाधिकार, वर्णसकर जातियों; यवन; शक; कम्बोज; म्लेच्छ आदि की आचारसंहिता, चतुवर्ण के साधारण कर्तव्य, द्विजाति के धर्म की श्रेष्ठता, आपत्ति में ब्राह्मण की आजीविका के साधन, ब्राह्मण को विक्रय के लिए त्याज्य वस्तुयें, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र की आपत्ति में आजीविका आदि।

एकादश अध्याय :– स्नातक के नव प्रकार, परिवार का भरण–पोषण न करने में दोष, शूद्र की यज्ञनिमित्तक भिक्षा का निषेध, पाँच महापाप, प्रायश्चित के विभिन्न प्रकार, पूर्व जन्म के पाप से रोगोत्पत्ति, उपपातक एवं उनके प्रायश्चित, पापवृत्ति की निन्दा, तप की स्तुति, वेदाभ्यास की प्रशंसा तथा पापनाशक पवित्र मन्त्र आदि।

द्वादश अध्याय :– कर्म विवेचन, शुभाशुभ कर्मफल, तीन प्रकार के मानवकर्म, त्रिदण्डी परिचय, धर्माधर्म के बाहुल्य से भोग, सत्त्वगुण; रजोगुण और तमोगुण का स्वरूप, निःश्रेयस की उत्पत्ति का

उपाय, आत्मज्ञान की सर्वोच्चता, वेद–वेदज्ञ की प्रशंसा, धर्मज्ञ का लक्षण, सृष्टि एवं प्रलय की निरन्तरता तथा धर्मशास्त्र के अध्ययन का फल।

पद्यबद्ध स्मृति में मनुस्मृति प्राचीनतम मानी जाती है। धर्मशास्त्रप्रवर्तक के रूप में मनु का उल्लेख श्रुति–स्मृति–पुराणादि वाङ्मय में पाया जाता है। मनुभाषित वस्तु का धर्मपूर्णत्व आत्रेय–तैत्तिरीय–कृष्णयजुर्वेद–संहिता में ''मानवी ऋचौ धाय्ये कुर्याद् यद् वै किं च मनुरवदत् तद् भेषजम्'' ऐसा कहकर और ताण्डिकौथुमराणायनीय पंचविंशब्राह्मण में भी ''मनोर् ऋचः सामिधेन्यो भवन्ति, मनुर् वै यत् किं चा•वदत्। तद् भेषजं भेषजतायै'' ऐसा कहकर प्रतिपादित किया गया हैं निरुक्त में भी ''अविशेषेण पुत्त्राणां दायो भवति धर्मतः। मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवो•ब्रवीत्'' कहकर मनु का धर्मप्रवक्तृत्व उल्लिखित किया गया है। वासिष्ठधर्मसूत्र में ''देशधर्म–जातिधर्म–कुलधर्माञ् श्रुत्यभावादब्रवीन् मनुः'' कहकर मनु का धर्मप्रवक्तृत्व उल्लिखित किया गया है। बौधायनधर्मसूत्र में भी मनु का धर्मप्रवक्तृत्व उल्लिखित है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में भी मनुका उल्लेख है। गौतमधर्मसूत्र में भी धर्मप्रवक्ता के रूप में मनु का उल्लेख उपलब्ध होता है। कूर्मपुराण में भी सर्वप्रथम आचार–व्यवहारादिधर्म के प्रवक्ता के रूप में स्वायम्भुव मनु उल्लिखित है। पुराणों में धर्मप्रवक्ता मनु का उल्लेख अनेक स्थल में मिलते हैं। मत्स्यपुराण में भी धर्म बताने वाले मनु का उल्लेख मिलता है। स्कन्दपुराण में भी मनु का धर्मप्रवक्ता के रूप में उल्लेख पाया जाता है। वाल्मीकिरामायण में भी मनु का धर्मप्रवचन करने वाले मान्यजन के रूप में उल्लेख मिलता है। महाभारत में भी अनेक स्थलों में धर्मप्रवक्ता के रूप में मनु का उल्लेख हुआ है। महाभारत में केवल स्वायम्भुव प्रजापति मनु को ही अकेले रूप में भी धर्मसंशय में निर्णय देने में समर्थ के रूप में उल्लिखित किया गया है। वात्स्यायनप्रणीत कामसूत्र में भी स्वायम्भुव मनु का धर्मशास्त्रकार के रूप में उल्लेख किया गया है। रघुवंशकार हरिषेण ''कालिदास'' ने भी मनु का धर्मप्रणेता के रूप में उल्लेख किया है।

वर्तमान काल में उपलभ्यमान ऋजुविमल –भारुचि – मेधातिथि–गोविन्दराज–सर्वज्ञ– नारायण–कुल्लूकभट्टादिव्याख्यात मनुस्मृति ग्रन्थ के श्लोकों के समान श्लोक अनेक पुराणों में, वासिष्ठधर्मसूत्र में, विष्णुधर्मसूत्र में और वाल्मीकिरामायण में भी मिलते हैं। महाभारत में भी ऐसे श्लोक प्रभूत मात्रा में मिलते हैं। पाणिनीय–व्याकरणभाष्य में भी ''दूरादावसथान् मूत्रं दूरात् पादावसेचनम्' इत्यादि श्लोकांश मिलता है।

यद्यपि जैमिनीय–धर्ममीमांसासूत्र के भाष्यकार शबरस्वामी ने धर्मशास्त्रकार के रूप में ''नन्वविदुषामुपदेशो ना•वकल्पते, उपदिष्टवन्तश् च मन्वादयः''। इत्यादि वाक्य में मनु का उल्लेख किया है, तथा•पि वर्तमान मनुस्मृतिग्रन्थ का केवल एक ही वचन उन के भाष्य में पाया जाता है। कुमारिल भट्ट ने तो वर्तमान मनुस्मृति के बहूत वचन उद्धृत किए हैं। शंकरभगवत्पाद ने भी वर्तमान मनुस्मृति के अनेक वचन अपने ग्रन्थों में उद्धृत किए हैं। उन्होंने ऐतरेय्युपनिषद् की व्याख्या में , बृहदारण्यकोपनिषद् की व्याख्या में , तैत्तिरीयोपनिषद् की व्याख्या में , छान्दोग्योपनिषद् की व्याख्या में , भी वर्तमान् काल में उपलब्ध मनुस्मृति के वचन प्रमाण के रूप में दिखाये हैं।

1. द्रष्टव्य–धर्मशास्त्र का इंतिहास, प्रथम भाग (हिन्दी अनुवाद–काश्यप पृ0 27–28)
2. मनुस्मृति, 2 / 121
3. धम्मपद, सहस्सवग्ग 10
4. मनुस्मृति, 2 / 156
5. मम्मपद, धम्मट्ठवग्ग 5
6. त्रीणि वर्षाण्यृतुमतीं यः कन्यां न प्रयच्छति। स तुल्यं भ्रूणहत्यायै दोषमृच्छत्यसंशयम्।।
   न याचते चेदेवं स्याद् याचते चेत् पृथक्पृथक्। एकैकस्मिन्नृतौ दोषं पातकं मनुरब्रवीत्।।–4 / 1 / 13,14
   त्रिरात्रं वा•प्युपवसन् त्रिरह्नो•भ्युपेयादपः। प्राणानात्मनि संयम्य त्रिः पठेदघमर्षणम्।।
   यथा•श्वमेधावभृथ एवं तन् मनुरब्रवीत्।।–4 / 2 / 15,16
7. अथैतन् मनुः श्राद्धशब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिश्श्रेयसाय च।–2 / 7 / 1 / 1
8. त्रीणि प्रथमान्यनिर्देश्यानि मनुः।–3 / 3 / 7 (21 / 7)
9. वर्णानामनुकम्पार्थं मन्नियोगाद् विराट् स्वयम्। स्वायम्भुवो मनुर् धर्मान् मुनीनां पूर्वमुक्तवान्।।
   श्रुत्वा चान्ये•पि मुनयस् तन्मुखाद् धर्ममुत्तमम्। चक्रुर् धर्मप्रतिष्ठार्थं धर्मशास्त्राणि चैव हि।।–1 / 12 / 165,166
10. न दण्ड्या मनुब्रवीत्।–227 / 28
    उत्तमं साहसं दण्ड्य इति स्वायम्भुवो•ब्रवीत्।–227 / 33
    वानस्पत्यं फलं मूलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च। तृणं गो•भ्यवहारार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत्।।
    अदेववाटिजं पुष्पं देवतार्थं तथैव च।–227 / 113 / 114
11. प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं चतुर्भिरपरैः सह। सम्मन्त्र्य मनुना प्रोक्तमेतदेव द्विजोत्तमाः।।–6 / 163 / 21
12. श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ। गृहीतौ धर्मकुशलैस् तथा तच् चरितं मया।।
    राजभिर् धृतदण्डाश् च कृत्वा पापानि मानवाः। निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।।
    शासनाद् वा•पि मोक्षाद् वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते। राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्।।–4 / 18 / 32–43
13. अष्टावेव समासेन विवाहा धर्मतः स्मृताः। ब्राह्मो दैवस् तथैवा••र्षः प्राजापत्यस् तथा••सुरः।। गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चा•ष्टमः स्मृतः। तेषां धर्म्यान् यथापूर्वं मनुः स्वायम्भुवो•ब्रवीत्।।–1 / 93 / 8,9
    ऋषयस् तु व्रतपराः समागम्य पुरा विभुम्। धर्मं पप्रच्छुरासीनमादिकाले प्रजापतिम्।।
    कथमन्नं कथं पात्रं दानमध्ययनं तपः। कार्या•कार्यं च यत् सर्वं शंस वै त्वं प्रजापते।।
    तैरेवमुक्तो भगवान् मनुः स्वायम्भुवो•ब्रवीत्। शुश्रूषध्वं यथवृत्तं धर्मं व्यास–समासतः।।–12 / 36 / 3–5
14. तस्मान् न वाच्यं ह्येकेन बहुज्ञेना•पि संशये। प्रजापतिमपाहाय स्वायम्भुवमृते प्रभुम्।।–14 / 91 / 24
15. प्रजापतिर् हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणा•गे प्रोवाच।
    तस्यैकदेशिकं मनुः स्वायम्भुवो धर्मा•धिकारिकं पृथक् चकार।–1 / 1 / 5,6
16. नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।–14 / 67
17. भार्या दासश्च पुत्रश्च निर्धनाः सर्व एव ते। यत् ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद् धनम्।।–6 / 1 / 12
18. मन्वर्थमुक्तावलीसहितायां हिन्द्यनुवादयुतायां मनुस्मृतौ श्लोक सं. 1 / 3 / 2, 1 / 3 / 4, 1 / 3 / 7 इत्यादि।
19. एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रमेके•परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्। 3 / 1 / 3
20. मन्वर्थमुक्तावलीसहितायां हिन्द्यनुवादयुतायां मनुस्मृतौ श्लोक सं. 1 / 4 / 6, 3 / 3 / 1, 1 / 4 / 6, 1 / 4 / 6,
21. तपसा कल्मषं हन्ति विद्यया•मृतमश्नुते।।–1 / 11 / 1
22. यो•सावतीन्द्रियो•ग्राह्यः।–1 / 1 / 1, 1 / 1 / 5